ISSN : 2395-4132

THE EXPRESSION

An International Multidisciplinary e-Journal

Bimonthly Refereed & Indexed Open Access e-Journal

Impact Factor 3.9

Vol. 7 Issue 5 October 2021

Editor-in-Chief : Dr. Bijender Singh

Email : editor@expressionjournal.com

www.expressionjournal.com

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में दलित जीवन का मार्मिक चित्रण: एक मीमांसात्मक अध्यन

मोहम्मद अली
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
शासकीय प्रथम श्रेणी, महिला महाविद्यालय, दावणगेरे (कर्नाटक)

सारांश

दलित साहित्य को अगर 'मार्मिक जीवन का चित्रण' या 'दर्द की अभिव्यक्ति' कहा जाये तो शायद इस कथन में किंचित भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। दलित वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है और इस वेदना को जितना एक दलित समझ सकता है, शायद उतना और कोई भी नहीं। यही कारण है कि दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन के कटु सत्य का बोध होता प्रतीत होता है और यह केवल दलित साहित्यिक रचनाओं द्वारा ही प्रस्फुटित होता है। जहाँ तक एक दलित उपन्यास या कहानी का सवाल है, उसमें भी दलित चित्रण होता जरूर है, लेकिन उसमें सत्य का बोध कम और कल्पना की उड़ान ज्यादा होती है। यही मुख्य कारण है कि आज दलित उपन्यास, कहानी या नाटक की बजाय एक आत्मकथा पाठक के हृदय को जल्दी द्रवित कर देती है और दलित चेतना की अनुभूति करवाती है। दलित साहित्य की इस प्रवाहमान धारा में कई अन्य आत्मकथाकारों की कृतियाँ भी मूर्धन्य स्थान रखती हैं; जैसे:- दया पवार की आत्मकथा 'अछूत', शियोराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', मोहनदास नेमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', अनीता भारती की 'छूटे हुए पन्नों की उड़ान', बलबीर माधोपुरी की 'छांग्या रुख', आदि। प्रस्तुत शोध पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में दलित समुदाय की गरीबी, भुखमरी, अस्पृश्यता और जातिवाद का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस शोध-पत्र में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस तरह से ओमप्रकाश वाल्मीकि और उनकी जाति के लोगों को जातिगत भेदभाव के दंश की पीड़ा को झेलना पड़ा था।

कुंजी-शब्द

दलित साहित्य, आत्मकथा, जातिवाद, अस्पृश्यता, समता, आक्रोश, दलित चेतना।

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में दलित जीवन का मार्मिक चित्रण: एक मीमांसात्मक अध्यन

मोहम्मद अली
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
शासकीय प्रथम श्रेणी, महिला महाविद्यालय, दावणगेरे (कर्नाटक)

दलित साहित्य में एक मूर्धन्य लेखक के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि की अपनी विशेष पहचान है। उनका दलित साहित्य में जो अविस्मर्णीय योगदान दिया है, उसको कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। वैसे तो वो उनकी बहुत सारी कृतियों के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनकी आत्मकथा 'जूठन' (1999) से उनको एक विशेष पहचान और हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान मिला। उस आत्मकथा का अंग्रेजी में अनुवाद अरुण प्रभा मुखर्जी ने किया और 2007 में अंग्रेजी प्रकाशित होने के बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि की ख्याति देश-विदेश में फैल गयी। उनकी आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "दलित जीवन कि पीड़ाएं असहनीय और अनुभव दग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने साँसें ली है, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी।" (7) दलित चेतना, समता और आक्रोश उनकी रचनाओं में देखने को मिल जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 को उत्तर प्रदेश के मुज्जफरपुर जिले के बरला गाँव में हुआ था। इनके पिताजी का नाम छोटन लाल और माता का नाम मुकुन्दी देवी था। ओमप्रकाश अपने घर का पहला बच्चा था जिसने स्कूल में जाना शुरू किया। 'जूठन' केवल ओमप्रकाश की आत्मकथा नहीं है, वरन इसमें उनकी पूरी जाति की दयनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण किया है। अपनी आत्मकथा के प्रारंभ में ही उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत में और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में दलितों के लिए समान स्थान और समान सम्मान नहीं है, अपितु उन्हें तो एक 'बहिस्कृत समाज' के रूप में आज भी देखा जाता है। अपनी आत्मकथा का प्रारंभ वो इन शब्दों से करते हैं, "हमारा घर चन्द्रभान टगा के घेर से सटा हुआ था। उसके बाद कुछ परिवार मुसलमान जुलाहों के थे। चंद्रभान टगा के घेर के सामने एक छोटी-सी जोहड़ी थी जिसने चुहड़ों के बगड़ और गाँव के बीच एक फासला बना दिया था।" (11)

ओमप्रकाश वाल्मीकि यह लिखते हैं कि उस समय उनके घरों में आज की तरह घर-घर में शौचालय नहीं बने होते थे और सभी औरतों और नयी-नवेली दुल्हनों को भी खुले में शौच के लिए जाने पड़ता था। वहाँ पर गाँव की उच्च जाति की महिलायें भी सुबह-सुबह पाखाने के लिए जाती थीं और इसी जगह पर बहुत ज्यादा लड़ाई झगड़े भी हुआ करते थे। उस जगह की गन्दगी के बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गन्ध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता।" (11)

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि उनकी जाति के लोगों का जीवन काफी कष्टमय होता था और इतना ही नहीं, उनको काम के बदले पग़ार भी पूरी नहीं मिलती थी और दलितों का हर तरह से शोषण किया जाता था। वो लिखते हैं कि उस समय में छुआछूत बहुत ज्यादा हुआ करती थी और दलितों को छूना पाप माना जाता था। इस बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था । वे सिर्फ जरूरत की वस्तू थे। काम पूरा होते ही इस्तेमाल खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।" (12)

सेवक राम मसीही ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को पढ़ना सिखाया क्योंकि उन दिनों सरकारी स्कूलों में दलितों के बच्चों के लिए कोई विशेष जगह नहीं थी। एक दिन ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी की सेवक राम मसीह से बहस हो गयी तो उनके पिताजी ओमप्रकाश को लेकर गाँव के प्राथमिक स्कूल में पहुँच गए और प्रवेश के लिए गुहार लगाई परन्तु वहाँ अध्यापक हरफूल उनको कई दिनों तक टालते रहे और उसके बाद जाकर कहीं ओमप्रकाश का स्कूल में प्रवेश हो पाया।

जब ओमप्रकाश छह वर्ष के थे तो उनके पिता ने लेखक का प्रवेश गाँव के ही एक प्राथमिक स्कूल में करवा दिया। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि एक निम्न जाति से सम्बन्ध रखते थे और उस समय ज्यादातर केवल स्वर्ण जाति के लोग ही अपने बच्चों को स्कूल भेजते थे। बहरहाल यही हुआ ओमप्रकाश वाल्मीकि के परिवार के साथ भी। यह एक आशा की एक नयी किरण थी कि ओमप्रकाश के पिताजी नहीं चाहते थे कि उनके बेटा भी एक सफाई कर्मचारी बनकर काम करे। अतः उनके पिता जी उनका दाखिला गाँव के ही एक सरकारी स्कूल में करवाने के लिए चल दिए।

ओमप्रकाश वाल्मीकि को स्कूल में भी विभिन्न प्रकार के जातिगत भेदभाव और अपमान का सामना करना पड़ा। स्कूल में अगर वह नये कपड़े पहन कर जाता तो दूसरे बच्चे उसे बोलते कि चूहड़े का नये कपड़े पहनकर आया है और अगर वह मैले और पुराने कपड़े पहनकर आता तो कहते कि "अबे चूहड़े के, दूर हट, बदबू आ रही है।" (13)

इसके बाद तो एक दौर शुरू हो गया जातिवाद और वेदना की अतिश्योक्ति का क्योंकि स्कूल में हेडमास्टर बिशम्बर की जगह एक नये हेडमास्टर कलीराम आ गए थे और उनके साथ एक दूसरे अध्यापक भी जो जातिगत भेदभाव में सख्त विश्वास रखते थे और दलित छात्रों पर अत्याचार करते थे। उनकी क्लास में तीन दलित छात्र थे और उनमें से राम सिंह तो शायद कभी उनके द्वारा बक्श भी दिया जाये, परन्तु ओमप्रकाश और सुक्खन सिंह की पिटाई तो आम बात थी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने छात्र जीवन की सब समृतियों को अपनी आत्मकथा में एक विशेष स्थान दिया है। एक बार सुक्खन सिंह के पेट पर एक फोड़ा हो गया था और उनके अध्यापक ने उसके फोड़े पर ही घूंसा मार दिया था जिससे सुक्खन सिंह की चीख निखाल गयी थी परन्तु उनके अध्यापक को रत्ती भर भी इसका अफ़सोस नहीं हुआ। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस बारे में लिखते है, "सुक्खन की दर्दनाक चीख निकली। फोड़ा फूट गया था। उसे तड़फता

देखकर मुझे भी रोना आ गया था" (14) ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि उनके अध्यापक उनको माँ-बहन की गलियां देने में कोई गुरेज़ नहीं करते थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने स्कूल की एक घटना के बारे में बताते हैं जिसमें उनके हेडमास्टर उनको अपने ऑफिस के कमरे में बुलाते हैं और ओमप्रकाश के लिए यह फ़रमान जारी करते हैं कि जाओ और शीशम के पेड़ की टहनियाँ तोड़कर झाड़ू बनाओ और पूरे स्कूल की सफाई कर दो। उनका आदेश कुछ इस तरह का था, वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसे सीसा। तेरा तो खानदानी काम है। जा....फटाफट लग जा काम पे।" (14) इसके बाद तो ओमप्रकाश वाल्मीकि को पूरा स्कूल साफ़ करना पड़ा। उन्होंने पूरे जीवन भर में इतना काम कभी नहीं किया था क्योंकि हेडमास्टर ने कमरे और बरामदे साफ़ करने के बाद स्कूल के मैदान को भी साफ़ करने का आदेश जारी कर दिया था। मैदान को साफ़ करते-करते उनकी पीठ दुखने लग गयी थी और दुसरे दिन भी हेडमास्टर ने उनको फिर से सफाई के काम पर लगा दिया। तीसरे दिन तो हद ही हो गयी क्योंकि जब ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कक्षा में जाकर बैठ गया तो हेडमास्टर सीधा कक्षा में ही पहुँच गए और ओमप्रकाश की गर्दन दबोच ली और और उसे कक्षा से बाहर लाकर बरामदे में ला पटका और स्कूल को साफ करने के लिए लगा दिया। ओमप्रकाश अपने दर्द को इस आत्मकथा में कुछ इस तरह से लिखते हैं, "मेरी आँखों से आँसूं बहने लगे थे। रोते-रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा...मेरा रोम-रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था।" (15-16)

यह मात्र संयोग ही था कि उस दिन उसके पिताजी स्कूल के पास से गुजरे और ओमप्रकाश को स्कूल में झाड़ू लगाता देखता हैरान हो गए। जब ओमप्रकाश के पिताजी ने इसका कारण पूछा तो ओमप्रकाश ने रोते हुए सारा वृतांत कह डाला कि उनके अध्यापक उसे पढ़ने भी नहीं देते और सारा दिन झाड़ू लगवाते रहते हैं। यह सुनकर उनके पिता जी का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया और उन्होंने हेडमास्टर कलीराम के बारे में कहा, "कौन-सा मास्टर है वह द्रौणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है?" (16) हेडमास्टर कलीराम ने ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी को धमकाया परन्तु ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी ने हेडमास्टर का डटकर सामना किया और यह चुनौती भी दी कि केवल यही चूहड़े का लड़का ही इस मदरसे में नहीं पढ़ेगा बल्कि इसकी पीछे-पीछे और दूसरे बच्चे भी आएंगे।

वास्तव में, ओमप्रकाश के पिताजी ने यह सोचा था कि हेडमास्टर के इस निदंनीय बर्ताव के कारण उसे निंदा और अपमान का सामना करना पड़ेगा परन्तु वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हुआ और गाँव के व्यक्तियों ने इसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता का ही दोष निकल दिया और ज्यादातर ने तो उसकी नीची जाति होने के कारण यह भी कह दिया कि शिक्षा ग्रहण करना उनकी जाति के छात्रों के लिए जरूरी ही नहीं है क्योंकि बड़े होकर उन्होंने करनी तो गंदगी की सफाई ही है। उस रात को ओमप्रकाश के पिताजी को रात-भर नींद नहीं आई और वो सुबह-सुबह गाँव के प्रधान सगवा सिंह त्यागी की बैठक में पहुँच गए और न्याय की गुहार लगाई। ग्राम प्रधान के आश्वाशन देने के बाद उनके हस्तक्षेप से ओमप्रकाश को फिर से मदरसे में शिक्षा ग्रहण करने कि अनुमति मिली।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ग़रीबी, भुखमरी और लाचार लोगों की पीड़ा को एक नयी दिशा दी हैं। वो लिखते हैं कि किस तरह से उनकी जाति के गरीब लोग जूठन खाने के लिए विवश थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि उस समय शादियों के अवसर पर वाल्मीकि लोग बड़े-बड़े टोकरों में पत्तलों को रख देते थे और जिस भी शादी में कम जूठन मिलती थी, उस शादी या बारात के लोगों को भुक्खड़ कहा

जाता था। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस बारे में लिखते हैं कि वे इन टोकरों की जूठन को घर ले जाते थे और वहाँ पर पूरियों के बचे हुए टुकड़ों को चारपाई पर सुखा लिया जाता था और बरसात आदि के मौसम में जब उनके पास खाना कम पड़ जाया करता था तो वो इन पूरियों के टुकड़ों को पानी में भिगोकर नमक-मिर्च डालकर उबाल कर खा लेते थे।

वाल्मीकि लोग उच्च जाति के घरों में मवेशियों के गोबर को उनके उपले बनाने की जगह पर ले जाने एवं साफ-सफाई करने का काम भी करते थे जिसके बदले में उनको 10 जानवरों पर मात्र 25 किलो गेहूं मिलता था। उनका बड़ा भाई सुखबीर त्यागियों के यहाँ मवेशियों को चारा खिलने और गोबर फेंकने का कार्य करता था और दोपहर को जूठन खाने को दिया जाता था।

लेखक अपनी माता-पिता का हाथ बंटाने के लिए अपने-माता-पिता के साथ त्यागिओं के घर जाया करते थे तो उनका रहन-सहन और खान-पान देखकर यह सोचने पर विवश हो जाते थे कि उनको भी त्यागिओं जैसा खाना खाने को क्यों नहीं मिलता।

एक बार सुखदेव सिंह त्यागी की बेटी की शादी थी और उनकी माता 10-12 दिन से ही उनके घर की साफ-सफाई कर रही थी और सुखदेव के पिताजी गाँव में से बहुत सारी चारपाइयाँ बारात के लिए लेकर आए थे। जब बारात खाना खा चुकी, उस समय लेखक की माँ और लेखक की बहन माया टोकरा लिए दरवाजे से बाहर बैठी थीं। बारातियों के खाना खा लेने के बाद लेखक की माँ ने कहा, "चौधरी जी, इब तो सब खाणा खा के चले गए....म्हारे जक्तों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतज़ार कर रे थे" (21)। अतः जब लेखक की माँ ने जब कुछ मिठाई बच्चों के लिए मांगी तो सुखदेव सिंह त्यागी ने लेखक की माँ की बहुत ज्यादा बेज्जती की। उसने पत्तलों से भरे टोकरे की और इशारा करके कहा, "टोकरा भर तो जूठन ले जा री है...ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग रही है? अपणी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन" (21)। सुखदेव त्यागी के शब्द चाकू की तरह लेखक के सीने में उतर गए और लेखक की माँ भी बहुत ज्यादा गुस्सा हो गयी। उसने पत्तलों से भरे टोकरे को वहीं बिखरा दिया था और कहा था, "इसे ठाके आपणे घर धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देना।" (21)

ओमप्रकाश वाल्मीकि के भाई सुखबीर की मृत्यु गरीबी के कारण बिना उचित इलाज के हो गयी थी। इसके बाद उसका भाई नौकरी करने के लिए बंगाल चला गया और लेखक की माँ बहुत ज्यादा परेशान रहने लग गयी थी। जब ओमप्रकाश की फीस के पैसे घर में नहीं थे तो उसकी भाभी ने अपनी पाज़ेब दी और ओमप्रकाश का दाख़िला करवाने को कहा। जब लेखक की भाभी की पाज़ेब को गिरवी रखकर उसका दाखिला छटी कक्षा में करवाया गया। उनके एक अध्यापक योगेन्द्र त्यागी लेखक की कमीज को खींचकर पकड़ लेते थे और उनको सूअर का मांस खाने बारे टिप्पणियां करते रहते थे। वो कहते थे, "अबे चूहड़े के, सूअर खाता है।" (29)

जब ओमप्रकाश वाल्मीकि नौंवीं कक्षा में थे तो अपने चाचा के साथ एक मरे हुए बैल को ले गए थे और तेज धूप में उस बैल की खाल उतारी। वो वहाँ बहुत ज्यादा परेशान हो गए। उसे दलित होने का दंश बहुत ज्यादा दुःखी कर देता है और वो जैसे तैसे इस वेदना से निकलना चाहते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि उन्होंने किस तरह से आर्डिनेंस फैक्ट्री, देहरादून में सहायक के रूप में कार्य करना शुरू किया और तब तक उन्होंने केवल बारहवीं कक्षा ही पास की थी। और उसके बाद उन्होंने आर्डिनेंस

फैक्ट्री चांदा, महाराष्ट्र में ड्राफ्ट्समैन के पद पर कार्य किया और अंत में रक्षा मंत्रालय की आर्डिनेंस फैक्ट्री, ओम्नो इलेक्ट्रॉनिक्स में एक अधिकारी के रूप में कार्य किया।

अत: इस विस्तृत विश्लेषण से तटस्थ रूप में यह लिखा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि जहाँ-जहाँ भी गए, उनकी जाति ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा और वो जातिवाद की इस बुराई को सब देखकर बहुत ज्यादा दु:खी हो जाते थे। इसी कारण उन्होंने अपनी जाति को छिपाने की बजाय इसे 'सरनेम' के रूप में लगाकर और सब दलितों के लिए एक मिसाल कायम की और दूसरों को यह अहसास करवाया कि किसी भी जाति में पैदा होना कोई बुरा नहीं होता, और कोई भी काम तुच्छ नहीं होता, केवल लोगों की मानसिकता छोटी हो सकती है। वस्तुतः ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' दलित जन-जाग्रति का सन्देश देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997.
केशवदत्त रुवाली, संपादक, दलित साहित्य सन्दर्भ, लखनऊ, अभिषेक प्रकाशन, 1998.
डॉ कमलेश सिंह, हिंदी आत्मकथा: स्वरुप एवं साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1989.
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्य: रचना और विचार, दिल्ली, कुमार पब्लिकेशन, 2007.
पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2003.